Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2024 SHISRRJ | Volume 7 | Issue 1
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

वैदिक दर्शन में 'मनुष्य' की अवधारणा

डॉ. वालखडे भूपेन्द्र अरूण

सहायक आचार्य, संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं प्राच्यभाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Publication Issue :
January-February-2024
Volume 7, Issue 1

Page Number : 95-100

Article History
Received : 01 Feb 2024
Published : 15 Feb 2024

शोध-सारांश – वैदिक चिन्तन में ब्रह्माण्ड को पिण्डवत् दर्शन की विचारणा व्यक्ति-समष्टि के मध्य ऐक्य स्थापन कर रही है। व्यक्तिनिष्ठ मानव तत्त्व पर वैदिक दर्शन के साथ नैकविध पाश्चात्य संस्कृतियों में और दर्शनों में पर्याप्त गहन चिन्तन-मनन किया गया है। मानव तत्त्व को वस्तुत: वैदिक अथवा भारतीय ज्ञान-शेवधि में दो रीतियों से प्रस्तुत किया गया है- प्रथमतया वह मानव तत्त्व जीवभूत है तथा अपरत्वेन उस मानव तत्त्व को आचार सम्बन्धी तथ्यों से संयुक्त किया गया है। यहाँ विशेष ध्यातव्य यह है कि इस प्रकार से सामयिक तथा तात्विक प्रकाद्वत्वेन युगपत् विवेचना करने वाला वैदिक दर्शनातिरिक्त अन्य दर्शन प्राय: अप्राप्य है। प्रस्तुत शोध-प्रपत्र का मुख्य उद्देश्य केवल भारतीय वैदिक दर्शन में प्राप्त "मनुष्य" तत्त्व सम्बन्धी विचारों का सर्वेक्षण तथा समीक्षण करना है। तथा यही इस शोध-पत्र का अभिधेय भी है। इस शोध पत्र में सर्वेक्षणात्मक तथा समीक्षात्मक शोधप्रविधि का प्रयोग किया गया है।

कूटशब्द – भारतीय संस्कृति, वैदिक वाङ्मय, मानवता, मनुष्य, मनुष्य तथा मूल्य, मनुष्य का आत्मस्वरूपत्व, मनुष्य तथा अन्य जीव।

प्रास्ताविक – भारतीय संस्कृति की नैकविध विशेषताओं एवं विलक्षणताओं में यह एक विशिष्टता ही है कि यहाँ मनुष्य को केवल विवेकी प्राणी के रूप में ही नहीं देखा गया है। अत एव कोई भी शास्त्र अथवा विचारक यह नहीं कहता है कि मनुष्य में ही विचार करने की शक्ति है, अत: वही इस पृथ्वी पर शासन कर सकता है। यद्यपि यहाँ मानव को स्रष्टा का अनुपम उपहार अवश्य माना है तथा यह भी ठीक है कि मनुष्य अपने ज्ञान-विज्ञान एवं बुद्धि-कौशल के कारण सृष्टि का श्रेष्ठ प्राणी है[i] किन्तु दूसरी ओर मानव जीवन की एक प्रतिष्ठा है – मानवता[ii] तथा इस मानवता के निर्माण एवं विकास के लिए ही वेदादि सच्छास्त्रों का आविर्भाव हुआ है। वास्तव में भारतीय संस्कृति की अवधारणा में मनुष्य तर्कशील प्राणी के अतिरिक्त सामाजिक तथा आध्यात्मिक जीव भी है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें एक ऐसी दीव्य चेतना विद्यमान है, जो सदैव उसे उच्चतर बनने की प्रेरणा देती है[iii], यही विशेषता मानव को अन्य प्राणियों से भिन्न स्थापित करती है। अत: यहाँ भारतीय संस्कृति में विशेषत: वैदिक वाङ्मय के आधार पर मनुष्य की अवधारणा को स्पष्ट किया जा रहा है –

वैदिक वाङ्मय में 'मनुष्य' शब्द की अवधारणा – यास्काचार्य के अनुसार जो सोच-समझकर विचारपूर्वक कार्य करता है वह मनुष्य है- "मत्वा कर्माणि सीव्यतीति मनुष्य:।"[iv] किन्तु इससे वैदिक विचारधारा में यह तात्पर्य कदापि नहीं था कि

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

विवेकशील होने से इस संसार में वह ही सर्वोच्च है तथा अन्य वस्तुयें तदर्थ भोगमात्र हैं प्रत्युत इससे भीन्न प्रकृति तथा समस्त प्राकृतिक पदार्थों के प्रति सद्भाव दिखाते हुये उनसे प्रार्थना की गयी है कि वह मनुष्यों के लिए और अन्य जीवों के लिए हितकारी बनें।[v] वैदिक वाङ्मय में मनुष्य का बहुश: अर्थ हाड़-माँसयुक्त शरीर न होकर पूर्ण प्रत्यग् चैतन्य अथवा आत्मा अथवा परमपुरुष ईश्वर के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।[vi] परञ्च जहाँ नैतिक चर्चा तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्यों की चर्चा प्राप्त होती है वहीं पर मनुष्य से साधारण देहधारी मनुष्य की कल्पना की गयी है।[vii] पुरुष शब्द के निर्वचन में ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इस शरीररूपी नगरी का आत्मा ही स्वामी है[viii] और इस शरीर को आत्मा का भोगायतन माना गया है[ix] तथा देवताओं के वासयोग्य कहा गया है।[x] यद्यपि ब्राह्मणग्रन्थों में कही-कही पर मनुष्य को पशु के वर्ग में सम्मिलित किया गय है तथा इस पशुवर्ग में बहुधा गाय, अश्व, अजा, भेड़ इत्यादियों के साथ मनुष्य को भी पशु माना गया है[xi] तथापि ब्राह्मणग्रन्थों में मनुष्य को केवल पशु के रूप में न मानकर उसे पशुओं में विशिष्ट स्वीकार किया गया है एवञ्च अन्य प्राणियों से उसमें भेद सिद्ध किया गया है। अन्य प्राणी मनुष्य के बाद आयें[xii] तथा पशुओं में मनुष्य प्रथम पशु है।[xiii] यह दो पैरों वाला पशु है,[xiv] यह सीधा खड़ा रहता है।[xv] संक्षेप में, मनुष्य उन प्राणियों में राजा के समान है[xvi] तथा सभी प्राणी किसी न किसी तरह से उससे सम्बन्ध रखते हैं।[xvii] विशेषत: मनुष्य को अन्य प्राणियों से इसलिए पृथक् किया गया है यतो हि वह यज्ञों का सम्पादन व मन्त्रों से देवताओं की स्तुति कर सकता है।[xviii] अन्य जीवों की अपेक्षा पुरुष सृष्टि उत्पत्ति में प्रथम सहायक[xix] होने से वह प्रजापति का अत्यन्त निकटस्थ (नेदिष्ठ) प्राणी है।[xx] कतिपय सूक्त मनुष्य की एवं प्राणियों की रचना किस मूल कारण से हुयी, इसे प्रदर्शित करते हैं[xxi] तथा यज्ञसम्पादन की महिमा को भी दर्शाते हैं।[xxii]

भारतीय संस्कृति मनुष्य तथा मूल्य – भारतीय संस्कृति विशेषत: वैदिक संस्कृति उदात्त मानवीय भावनाओं और महान् नैतिक मूल्यों पर आधारित है। नैतिक मूल्य व्यक्तित्व निर्माण के प्रमुख घटक हैं। इनका पालन करके ही मनुष्य सही अर्थों में मनुष्य बनकर देवहितकारी सन्तान उत्पन्न कर सकता है। ऋग्वेद में कहा गया है –

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मन्त: पथो रक्ष धिया कृतान्॥

अनुल्वणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्॥[xxiii]

अर्थात् हे मनुष्य! सारे संसार का ताना-बाना बुनता हुआ भी (तू) प्रकाश का अनुगमन कर। बुद्धि से परिष्कृत किए हुए मार्गों की रक्षा कर। निरन्तर ज्ञान तथा कर्म का अनुष्ठान करनेवालों के उलझनरहित कर्मों को विस्तृत कर। इन उपायों से मनुष्य बन तथा देव हितकारी सन्तान उत्पन्न कर।[xxiv]

वेद ने मनुष्यों को अनैतिक कार्य करने की आज्ञा नहीं प्रदान की है अपितु सभी के साथ सहृदयतापूर्वक रहने का विधान किया है।[xxv] जिस पृथ्वी पर मनुष्य रहता है, वह उसकी जन्मभूमि होने के कारण मातृवत् पूज्य है तथा मनुष्य उससे आज्ञाकारी पुत्रवत् आचरण करें।[xxvi] मनुष्य को श्रेष्ठ कर्म करते हुये जीवन में सुख भोगने की अनुमति वेद प्रदान करता है।[xxvii] इस प्रकार मनुष्य सत्य, श्रद्धा, आशा, उत्साह, वीरता, पवित्रता, ब्रह्मचर्य, तप एवं व्रत इत्यादि गुणों से ओतप्रोत होकर ही स्वयं को उन्नत बना सकता है।

वैदिक संस्कृति में मनुष्य तथा अन्य जीव – वैदिक संस्कृति में मनुष्यों और जीवों में सौहार्द्र भावना होनी चाहिए, ऐसा उपदेश प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण में पशु की तुलना प्रजापति से की गयी है।[xxviii] वही पर अन्न के अपर नाम को गौ कहा है।[xxix] गौ को सभी प्राणियों में पूज्य माना गया है, इसलिए उसे मारने वाले को गोली से बींध देने का आदेश भी वेद ने दिया है[xxx] तथा अन्य पशुओं यथा – अजा, भेड़, घोडे, गधे इत्यादियों को मारने का निषेध है- **"पशून् पाहि॥**[xxxi]**, गां मा**

हिंसी:॥[xxxii]**, अजां मा हिंसी:॥ अविं मा हिंसी:॥ इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम्॥**[xxxiii] **मा हिंसीरेकशफं पशुम्॥**[xxxiv] **मा हिंस्यात्सर्वभूतानि॥ "**

परञ्च इतोऽपि कतिपय पक्षियों की बुरी आदतों से मनुष्य को बचने का भी उपदेश वेद में प्राप्त होता है। तद्यथा – उलुकवत् अन्धकारप्रियता का त्याग करें, भेड़िये की तरह क्रुरता तथा चालबाजी का त्याग करें, श्वानवत् ईर्ष्या–द्वेष इत्यादि दुर्गुण त्यागें, कोक (चिड़ा) की तरह अतिकामातुरता का त्याग करें, गरुड़ की तरह अहंकार का त्याग करें एवञ्च गिद्धवत् लालच न करें।[xxxv] एवं प्रकारेण भारतीय संस्कृति की परम्परावादी विचारधारा में सभी प्राणी, पशु–पक्षियों को अभय प्रदान कर उनसे स्नेह करने की ही बात कही गयी है।

मनुष्य : आत्मस्वरूप – भारतीय ज्ञान परम्परा में देहधारी पुरुष ऐसा व्यवहार नहीं होता है यतोहि प्राय: पुरुष अर्थात् आत्मा ही गृहीत किया जाता है। जब आत्मा, इन्द्रियाँ तथा मन मिलकर कोई कार्य करते हैं तब मनुष्य भोक्ता कहलाता है।[xxxvi] उपनिषदों का मुख्य उद्देश्य ही यही है कि 'स्वयम् को जानो', इससे भी यही तात्पर्य प्राप्त होता है कि 'वास्तविक' मनुष्य कोई और ही है, जो कार्य करना, चलना इत्यादि क्रियायें इस जगत् में करता है। वह इससे पृथक् होकर साक्षित्व भाव से सब देख रहा है।[xxxvii] इसी आत्मन् की छान्दोग्योपनिषद् एवं माण्डुक्योपनिषद् में पादचतुष्टय की चर्चा प्राप्त होती है – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय। इसमें सर्वश्रेष्ठ अवस्था जहाँ वास्तविक आत्मा के दर्शन होते है तथा द्वैतभाव समाप्त हो जाता है, तुरीयावस्था है।[xxxviii] तैत्तिरीयोपनिषद् में आत्मा के पाँच – अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवञ्च आनन्दमय कोशों का वर्णन आत्मतत्त्व को ही स्पष्ट करने हेतु दिया गया है।[xxxix] अत: मनुष्य की अपेक्षा आत्मा तथा पुरुष का ही विचार वैदिक वाङ्मय में प्राय: दृष्टिगोचर होता है।

उपसंहार - भारतीय वैदिक दर्शन में मनुष्य के आचारतत्त्वों के साथ–साथ तथा उससे भी अधिक उसके आध्यात्मिक पक्ष पर बल दिया है। मनुष्य के लिए ईश्वरानुभूति को मुख्य माना तथा सृष्टि को साधन मानकर त्यागपूर्वक भोग के लिए मनुष्य को आज्ञा दी है।[xl] पशु–पक्षी–वृक्ष–वनस्पति इत्यादि स्थावर–जङ्गम पदार्थों के साथ वैदिक दर्शन में मनुष्य तत्त्व का साम्मिल्य अद्भुत दृष्टिगोचर होता है। अत: संक्षेपधिया यह कह सकते है कि भारतीय वैदिक दर्शन में यह विचार है कि जो सारभूत है, उसे ग्रहण करना चाहिए तथा अन्य का त्याग करना चाहिए। यथा हंस को दूध अपेक्षित होता है। अत: वह जलमिश्रित दूध से भी केवल दूध का ही ग्रहण करता है– **"यत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥ "**[xli]

---

i. महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।, मनुस्मृति, 7/8; न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।, शान्तिपर्व, महाभारत, 299/20.

ii. मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्, ऋग्वेद, 10/53/6.

iii. उद्वयं तमसस्परि स्व: पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥, यजुर्वेद, 35/14.

iv. निरुक्तम्, यास्काचार्य, 3/7.

v. असम्बाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वत: प्रवत: समं बहु: । नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न: प्रथतां राध्यतां न:॥, अथर्ववेद, 12/1/2.

vi. अपाणिपादो जवनो ग्रहिता पश्यत्यचक्षु: स श्रुणोत्यकर्ण:। स वेत्ति विश्वं न तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषम्पुराणम्॥, श्वेताश्वतरोपनिषद्, 3/19; पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥, ऋग्वेद, 10/90.

vii. न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्मचेत्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव॥, कठोपनिषद्, 1/27.

viii. पुरी शेते इति पुरुषः; पुरुषः परिषादः, पुरिशयः, पूरयतेर्वा पूरयत्यन्तर् इत्यन्तर् पुरुषमभिप्रेत्य।, निरुक्तम्, 2/3

ix. तस्य (आत्मनो) भोगायतनमन्त्यावयवि शरीरम्।, प्रमेयप्रकरणम्, तर्कभाषा, पृ.सं. 283.

x. अष्टाचक्र नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृता॥, अथर्ववेद, 10/02/31.

xi. स (प्रजापतिः) एतान् पञ्च पशून् अपश्यत्। पुरुषमश्वं गामविमजम्। यदपश्यत्तस्मादेते पशवः॥, शतपथ ब्राह्मणम्, 6/2/1/2.

xii. या वै प्रजा यज्ञे अनन्वागक्ताः पराभूताः वै ताः।. . . . . तेन ह पशवोऽनन्वगक्ताः... यन्मनुष्याननु पशवः॥, Ibid, 2/3/1/20.

xiii. पुरुषो हि प्रथमः पशूनाम् अथाश्वं पुरुषं ह्यन्वश्वः अथ गामश्वमनु गौः अथाविम् गाम् अन्वविः अथाजमविं ह्यन्वजः तदेनान् यथापूर्वं यथाश्रेष्ठमालभते॥, Ibid, 6/2/1/18.

xiv. Ibid, 7/5/2/32; तथा 2/5/1/1.

xv. Ibid, 4/5/2/5.

xvi. Ibid, 4/5/5/7.

xvii. Ibid, 7/5/2/6.

xviii. अथ पुरुषशीर्षमभिजुहोति। आहुतिर्वै यज्ञः। पुरुषं तत्पशूनां यज्ञीयं करोति तस्मात् पुरुष एव पशूनां यजते॥, Ibid, 7/5/2/23.

xix. स वै नैव रेमे तस्मादेकाकि न रमते स द्वितीयमेच्छत.....स इममेवात्मानं द्विधाऽपातयत। ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धवृगलमिव स्व ह.....ततो मनुष्या अजायन्त॥, बृहदारण्यकोपनिषद्, 1/4/3 (पूर्ण)

xx. प्रजापतिर्वा इदमग्र एक एवास। ..... स तपोऽतप्यत, स प्रजा असृजत। ..... पुरुषो वै प्रजापतेः नेदिष्टम् द्विपाद्वा अयं पुरुषः। तस्माद् द्विपादो वयांसि।, शतपथ ब्राह्मणम्, 2/5/1/1.

xxi. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदःकस्मै देवाय हविषा विधेम॥, ऋग्वेद, 10/121/3.

xxii. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥, Ibid, 10/90/16.

xxiii. Ibid, 10/53/6.

xxiv. उद्धृत, वालखडे भूपेन्द्र अ., "चाइनिज संस्कृति तथा भारतीय वैदिक संस्कृति में "मनुष्य" की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन", भास्वती, 44 अंक जुलाई-दिसम्बर 2023, संस्कृत एवं अन्य प्राच्य भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 2023, पृ.90, ISSN- 0976-9196.

xxv. सहृदयं साम्मनस्यमद्वेषं कृणोमि वः। अन्योन्यभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥, अथर्ववेद, 3/30/1.

xxvi. माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥, अथर्ववेद, 12/1/12.

xxvii. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।, ईशोपनिषद्, 2.

xxviii. शतपथ ब्राह्मणम्, 11/6/3/9.

xxix. Ibid, 4/3/4/25.

xxx. यदि नो गां हिंसीः। यद्यश्वं यदि पुरुषम्। तन्त्वा सिसेम विद्ध्यामोऽथा नो सोऽविरहा॥, अथर्ववेद, 1/16/4;
यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः। यो अघ्नया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च॥, ऋग्वेद, 10/87/16.

xxxi. यजुर्वेद, 1/1.

xxxii. यजुर्वेद, 13/43.

xxxiii. Ibid, 13/47

xxxiv. यजुर्वेद, 13/43.

xxxv. उलूकयातुं शुशूलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥, ऋग्वेद, 7/104/22.

xxxvi. इन्द्रियाणि ह्यानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान्। आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥, कठोपनिषद्, 3/4.

xxxvii द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥, श्वेताश्वतरोपनिषद्, 4/6.

xxxviii. जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः। स्थूलभुक्वैश्वानरः प्रथमः पादः॥, स्वप्नस्थानेऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः। प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयपादः॥, यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयः ह्यानन्दभुक् चेतो मुखः प्राज्ञः तृतीयपादः॥, नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृश्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपेक्श्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥, माण्डुक्योपनिषद्, 3-5,7.

xxxix. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/2-5.

xl. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥, ईशोपनिषद्, 1.

xli. 'मित्रभेद' नामक प्रथमतन्त्र, पञ्चतन्त्र।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

(संस्कृत एवं हिन्दी ग्रन्थ)

1. अथर्ववेद का सुबोध भाष्य (भाग-4), श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पारडी : स्वाध्याय मण्डल, 1985, चतुर्थ संस्करण।
2. ईशादि नौ उपनिषद् (शांकरभाष्य सहित), गोरखपुर : गीताप्रेस, वि. सं. 2060।
3. ऋग्वेद संहिता (1-7 खण्ड), जियालाल कम्बोज, नई दिल्ली : विद्यानिधि प्रकाशन, 2004-2012, प्रथम संस्करण।
4. छान्दोग्योपनिषद्, गोरखपुर : गीताप्रेस, वि. सं. 2095।
5. तर्कभाषा, केशव मिश्र, व्याख्या. डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, मेरठ : साहित्य भण्डार, 1999.
6. निरुक्तम् (निरुक्त विवृत्या समुपेतम्), पं. श्री. मुकुन्द शर्मा पाणिनी, नई दिल्ली : 1982
7. नीतिशतक, भर्तृहरि, व्याख्या. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2009

8. बृहदारण्यकोपनिषद्, सं. महादेवानन्द स्वामी, कलकत्ता : अद्वैत आश्रम, 1997, तृतीय संस्करण।
9. मनुस्मृतिः, मनु, व्याख्या एवं अनु. सुरेन्द्र कुमार, राजवीर शास्त्री (सं.), नई दिल्ली : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 2000
10. महाभाष्यम् (हिन्दी व्याख्या सहित), महर्षि पतञ्जलि, व्याख्या. युधिष्ठिरो मीमांसक, सोनीपत : रामलाल कपूर ट्रस्ट, 1992
11. यजुर्वेद का सुबोध भाष्य, श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर, पारडी : स्वाध्याय मण्डल, 1949
12. शतपथ ब्राह्मणम्, स्वामी समर्पणानन्द, मेरठ : वैदिक शोध संस्थानम्, 1995
13. श्वेताश्वतरोपनिषद् (शाङ्कर भाष्य सहित), सं. जगन्नाथ शास्त्री 'तैलङ्ग', वाराणसी : भारतीय विद्यानिधि प्रकाशन, 2002, प्रथम संस्करण।

14. (आङ्ग्ल ग्रन्थ)

15. Dasgupta, S.N., A History of Indian Philosophy (5 Vols.), Cambridge : Cambridge University Press, 1922–1955.
16. Nakamure, Hajime, Comparative History of Ideas, Delhi : Motilal Banarasidass, 1992.
17. Radhakrishnan, S., Eastern Religions and Western Thought, Delhi : Oxford University Press, 2013 (Indian Edition)
18. ....., ..., and T. P. Raju, The Concept of Man : A Study in Comparative Philosophy, New Delhi : Harper Colling Publishers, 2004.